वेदप्रकाश

संस्थापक : **स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द**

वर्ष ६३ अंक २ वार्षिक मूल्य : तीस रुपये, एक प्रति ५ रुपये, सितम्बर, २०१३

सम्पा० **अजयकुमार** पूर्व सम्पादक : स्व० **स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

हमारा सर्वस्व–'ईश्वर, वेद और सृष्टि'

–मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला–2, देहरादून

हम मनुष्य हैं और वेदों ने हमें दो पैर वाला प्राणी कहा है। हमारा शरीर जड़ है जिसमें एक जीवात्मा नाम से जाना जाने वाला चेतन तत्व निवास करता है। हम कहते हैं कि यह मेरी आंख है, यह मेरी नाक है, यह मेरा कान है और यह मेरा हाथ है आदि, इससे ज्ञात होता है कि मैं आंख, नाक, कान व हाथ आदि या मेरा पूरा शरीर 'मैं' नहीं हूँ बल्कि इन से भिन्न हूँ। **यह शरीर एवं इसमें सभी अंग मेरे अवश्य हैं परन्तु मैं इन सबसे भिन्न हूं।** मैं कैसा हूं तो अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मैं एक चेतन तत्व हूं जो अत्यन्त सूक्ष्म, नेत्रेन्द्रिय से अगोचर, सत्य, अविनाशी, अजन्मा, अमर, नित्य, अल्पज्ञ, अल्प परिमाण, अणुरूप, एकदेशी, ससीम, शुभ–अशुभ कर्मों का कर्ता व इनके सुख व दुख रूप फलों का भोक्ता हूं। इस संसार में मेरा जन्म माता व पिता से हुआ है। **जन्म धारण करने में मेरी व किसी की भी मर्जी नहीं चलती। यदि जनम लेने की स्वतन्त्रता होती तो मैं कहीं और व किसी अन्य माता–पिता से जन्म लेता। मुझे जन्म देने वाला माता–पिता से भिन्न अन्य कोई अवश्य है जिसने निर्णय किया कि वर्तमान जीवन के माता–पिता मेरे माता–पिता होंगे। फिर प्राकृतिक प्रक्रिया से मेरा जन्म हो गया।** मुझे कर्म करने की स्वतन्त्रता है पर मैं फलों के बन्धन में बन्धा हुआ हूँ। अल्पज्ञ व अल्प शक्ति वाला होने से मैं जो कार्य करता हूँ उसमें कमियां रह जाती हैं। विद्याध्ययन एवं पुरूषार्थ से मैं अपने कार्यो में दक्षता प्राप्त करता हूँ। ऐसा करके मैं एक सामान्य व्यक्ति बनता हूँ जो अपना निर्वाह अन्यों की तरह सामान्य रूप से या उनसे कुछ उन्नत तरीके से व्यतीत करता हूँ। **यह कुछ–कुछ मेरा परिचय है।**

हमारी वर्तमान पीढ़ी व सृष्टि की आदि से लेकर अब तक उत्पन्न हुए सभी पूर्वजों व नाना योनियों के जीवधारियों को यह सारा संसार बना बनाया मिला है। हम सूर्य, चन्द्र, तारे, नक्षत्र, नाना ग्रह व आकाशीय छोटे-बड़े पिण्ड, आकाश, पृथिवी, अग्नि, वायु, जल, वन, पर्वत, नदियाँ, समुद्र, अन्न-ओषधियाँ आदि वनस्पतियाँ आदि संसार में देखते हैं जो सभी हमें बनी बनाई मिली हैं। यह सब वस्तुयें किससे प्राप्त हुई हैं? हम व प्रायः सभी लोग इस पर विचार नहीं करते। हमें लगता है कि सभी मनुष्य रात-दिन केवल अपने-अपने अन्य-अन्य कार्यों में लगे हैं और इस ओर ध्यान ही नहीं जाता। एक कारण यह भी है कि यदि वह इसका उत्तर भिन्न-भिन्न मत के धार्मिक लोगों से पूछते हैं तो उनके उत्तरों से समाधान नहीं होता। वे या तो परम्परागत, अविवेकपूर्ण या असत्य उत्तरों को मान लेते हैं या उसे स्वीकार ही नहीं करते। उनके पास इस बात के लिए समय नहीं हैं कि वह उन विद्वानों की तलाश करें जो इनके सत्य उत्तर जानते हैं। **इन सब उत्तरों में से एक उत्तर है कि यह सारा संसार एवं इसकी समस्त वस्तुयें एक परम विशाल, अनन्त, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान चेतन सत्ता ने बनाई हैं। उसे सृष्टि बनाने व चलाने का ज्ञान है और अब तक वह अनन्त बार सृष्टि को बनाकर चला चुका है और यह क्रम अनन्त बार इसी प्रकार से चलेगा। इस सृष्टि के आदि से ईश्वर इसे बना कर चला रहा है।** 4 अरब 32 करोड़ वर्ष की सृष्टि की आयु है। जब यह पूर्ण हो जायेगी तो ईश्वर द्वारा यह सृष्टि प्रलय को प्राप्त हो जायेगी। प्रलय की अवस्था वह अवस्था है जो इस सृष्टि की रचना से पूर्व की, इसकी कारण अवस्था, थी अर्थात् सत् रज व तम की साम्यावस्था। विवेक से यह ज्ञान होता है कि ईश्वर इस सृष्टि को धारण कर रहा है। जब तक वह इसे धारण किए हुए है, यह संसार भली-भांति चल रहा है। ईश्वर की रात्रि के आरम्भ होने पर कि जब वह सृष्टि को ध ारण नहीं करता, वह अवस्था प्रलय की होती है। तब सब कुछ नष्ट हो जायेगा। सूर्य, चन्द्र, तारे, सभी आकाशीय पिण्ड व पृथिवीस्थ सभी रचनायें अपने कारण मूल प्रकृति में विलीन हो जायेगी।

जिस प्रकार हमारा आत्मा अति-सूक्ष्म है, यह हम सब अनुभव करते हैं। यह चेतन तत्व, ज्ञान व कर्म स्वभाव वाला है, यह भी हम अनुभव करते हैं। यह इतना सूक्ष्म हैं कि न तो हम स्वयं की आत्मा को देख पाते

हैं न अन्य प्राणियों की आत्माओं को जौ दैनिक जीवन में माता-पिता, भाई, बहिन, पत्नी व बच्चों के रूप में हमारे सम्पर्क में रहतीं हैं। हमें उनके केवल शरीरों के दर्शन होते हैं और आँखों को देखने पर उसमें आत्मा की चमक दिखाई देती है जो मृतक शरीर की आंखों में नहीं होती। जीवात्मा की अति सूक्ष्मता के कारण उसका आकार प्रकार हमें अपने नेत्रों से दिखाई नहीं देता। **चिन्तन करने पर हमें ज्ञान होता है कि ईश्वर भी हमारी आत्मा के कुछ समान सत्य, चित्त, सर्वव्यापी, निराकार, हमारी आत्मा से भी सूक्ष्म, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान सत्ता है। उसी ने यह संसार बनाया है और वह इसको धारण किए हुए है अर्थात् इसका सर्वोत्कृष्ट रूप से संचालन कर रहा है।** यहां कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति यह कहेगा कि यद्यपि वह ईश्वर को देख तो नहीं पा रहा है परन्तु ईश्वर के जिस स्वरूप का उल्लेख किया गया है, उसका होना तर्क की दृष्टि से सिद्ध है और उसका होना असम्भव नहीं है। अब प्रश्न यह है कि कैसे पता चले कि वह वस्तुतः है। यहाँ हम महर्षि दयानन्द का उल्लेख करना चाहते हैं। वह प्रातः व रात्रि समय में समाधि लगाया करते थे। समाधि क्या होती है? ईश्वर का ध्यान जब स्थिर हो जाता है, टूटता नहीं, अखण्डित रहता है, उस ध्यान की निरन्तरता को समाधि कहते हैं। उन्होंने सम्यक्-ध्यान व समाधि के बारे में अपने ग्रन्थों में लिखा है। उनके अनेक अन्तेवासी बन्धुओं ने उन्हें समाधि लगाये हुए भी देखा था जिसका वर्णन साहित्य में उपलब्ध है। उन्होंने लिखा है कि ईश्वर का ध्यान व उपासना करने से आत्मा के दुगुर्ण दूर होकर ईश्वर के गुणों के सदृश हो जाते हैं और आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि बड़े से बड़े दुःख के प्राप्त होने पर भी, यह हमारी स्वयं की मृत्यु का दुःख भी हो सकता है, मनुष्य घबराता नहीं है, क्या यह छोटी बात है? उनके जीवन की घटनायें उनके इस वक्तव्य की सत्यता का प्रमाण हैं। योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पंतजलि ने अनुभव व तर्क, दोनों के आधार पर ध्यान व समाधि एवं योग के अन्य सभी अंगों पर प्रयोग व अभ्यास से सत्य सिद्ध किए जा सकने वाले निष्कर्ष दिये हैं। जब ईश्वर का ध्यान करते हुए उसमें निरन्तरता आ जाती है और साधक घंटों उसमें स्थित व स्थिर रहता है तो उस समाधि के सिद्ध होने पर हृदय में स्थित जीवात्मा में ईश्वर का साक्षात्कार, ईश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति व ईश्वर के आनन्द का अनुभव जो संसार के सभी सुखों से कहीं

अधिक बढ़कर होता है, जीवात्मा को अनुभव होता है। यह साक्षात्कार ऐसा है जैसा कि हम हमने सांसारिक जीवन में वस्तुओं को देखकर, सुनकर, पढ़कर निर्भ्रान्त व संशयरहित ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके बारे में मुण्डक उपनिषद् के 40 वें श्लोक–**'भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।' में कहा गया है कि ईश्वर का साक्षात्कार अथवा अपने आन्तरिक ज्ञान–चक्षुओं से दर्शन हो जाने पर हृदय की सभी गांठें व ग्रन्थियां खुल जाती हैं, सभी संशय मिट जाते हैं, दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं और तब उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है, उस में वह जीवात्मा निवास करती है।** ईश्वर के साक्षात्कार के बाद जब मृत्यु आती है तब जीव जन्म–मरण के चक्र से मुक्त होकर मुक्ति में चला जाता है। मुक्ति का लाभ व सुख ऐसा है जिसकी उपमा में कोई सांसारिक सुख या पदार्थ नहीं है। हां, यह तो कह सकते हैं कि बड़े से बड़े सांसारिक सुख मुक्ति के सुख की तुलना में हेय व न्यून ही हैं। यह मुक्ति विवेकशील कुछ ही लोगों को प्राप्त होती है। **हम यह अनुमान करते हैं कि अतीत में यह मुक्ति योगेश्वर कृष्ण, मर्यादा पुरूषोत्तम राम, महर्षि दयानन्द सरस्वती, इनसे पूर्व हुए सन्त, ऋषि–महर्षि व योगियों को प्राप्त हुई होगी। प्रत्येक समझदार वा ज्ञानी मनुष्य को वेद मार्ग पर चल कर मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये, ऐसा वैदिक साहित्य के विद्वानों का मत है।**

इस विवरण से हम समझते हैं कि आधुनिक, तार्किक व विचारशील माने जाने वाले युवा–वृद्ध बन्धु भी काफी सीमा तक ईश्वर के अस्तित्व व उसके साक्षात्कार के सिद्धान्त व मान्यता से सहमत होंगे। यदि उन्हें कहीं कुछ भी शंका है तो हमारा सुझाव है कि वह स्वयं वैदिक ग्रनथों का स्वाध्याय एवं योग का व्यवहारिक प्रयोग करके देख सकते हैं। कुछ दिनों के स्वाध्याय व अभ्यास से उन्हें अनुमान होगा कि ईश्वर, जीवात्मा व ईश्वर के साक्षात्कार की मान्यातायें सत्य व यर्थाथ है। लेख जी यहाँ तक की यात्रा के बाद एक साधक न अध्येता की ज्ञान प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा का उत्पन्न होना स्वाभाविक लगता है उसे यह भी अनुमान हो गया कि ने जब सृष्टि बनाई तो लोगों के कल्याण के लिए उसने कुछ ज्ञान तो आदि मनुष्यों को अवश्य दिया ही होगा अन्यथा वह अपने सभी

सांसारिक व्यवहार कैसे करते और ईश्वर का ज्ञानवान व सर्वशक्तिमान होना व्यर्थ सिद्ध होता है। यदि वह ज्ञान नहीं देता तो अनेक पीढ़ियां तो बिना किसी धर्म–कर्म का पालन किये ही समाप्त हो जाती और यदि अन्य किसी हेतु से, जो सर्वथा असम्भव है, ज्ञान प्राप्त भी होता तो उसमें भी नाना मत होते और सत्य व असत्य का निर्णय करना कठिन हो जाता। **अतः जिज्ञासा उठने पर हमें स्वाध्याय व विवेक से ज्ञात होता कि संसार की सबसे प्राचीन ज्ञान की पुस्तक का नाम वेद है। वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद। सौभाग्य से हमारे पूर्वजों के पुरूपार्थ से यह आज भी अपने शुद्ध रूप में उपलब्ध हैं।** अब बात आती है कि वेदों के सत्य अर्थ कैसे जाने जायें तो इसके लिए भी हमारे पूर्वजों ने अथक परिश्रम किया और हमें संस्कृत की अष्टाध्यायी–महाभाष्य–निरूक्त–निघण्टु पद्धति दी है जिसका अध्ययन कर कोई भी व्यक्ति स्वयं वेदों के अर्थो को जान सकता है। यदि किसी कारण संस्कृताध्ययन में परिश्रम नहीं कर सकता है, तो महर्षि दयानन्द सरस्वती, आचार्य रामनाथ वेदालंकार, स्वामी विश्वनाथ विद्यालंकार व अन्य विद्वानों के उपलब्ध वेद भाष्यों से लाभान्वित हो सकता है। हमारा अनुमान है कि सच्चे जिज्ञासुओं को ईश्वर व सृष्टि विषयक सभी प्रश्नों का उत्तर व समाध ान प्राप्त हो जायेगा। **हमारा सुझाव है कि वेदों के सत्य–अर्थो को जानने के इच्छुक सभी जिज्ञासुओं को पहले सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका व आर्याभिविनय आदि पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिये जिससे उन्हें ईश्वर व सृष्टि आदि के विषय में प्रभूत ज्ञान हो जायेगा। हम अनुभव करते है कि वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर सभी अध्यतेता यह पायेंगे कि वेदाध्ययन से उनका जीवन सफल हुआ है। अन्य लोग जो वैदिक साहित्य के सम्पर्क में नहीं आ पाते हैं, उनकी ऐसी स्थिति होना सम्भव नहीं है।**

अब हम सृष्टि पर विचार करते हैं। वेद एवं वैदिक साहित्य उत्तर देते हैं कि परमात्मा ने यह सृष्टि हमारे त्यागपूर्वक उपभोग के लिए बनाई है। ईश्वर को यह ज्ञान था कि जिन मनुष्यों को वह उत्पन्न कर रहा है, उनकी आवश्यकतायें क्या–क्या होगी। उसने उदर व जिह्वा भी हमें प्रदान की है। जब व्यक्ति कार्य करता है तो थक जाता है और उसे भूख–प्यास लगती है। भूख की निवृत्ति के लिए भोजन व प्यास की निवृत्ति के लिए जल की आवश्यकता होती है। अतः ईश्वर ने जल व नाना प्रकार के भोजन के

पदार्थ बनाये हैं। शरीर का ढकने के लिए वस्त्र की आवश्यकता होती है, अतः इसके लिए भी रूई आदि आवश्यक पदार्थ बना कर उसका वस्त्र बनाकर उसे उपयोग करने का ज्ञान भी वेद, हमारी आत्मा, मन व बुद्धि में दिया है। इसी प्रकार शरीर में जो इन्द्रियाँ हैं, उन सबके विषय बनाकर सृष्टि में उपलब्ध करा रखे हैं। यह सृष्टि हमारे शरीर व जीवन के निर्वाह के लिये आवश्यक है। इसका सदुपयोग करना ईश्वर को प्रसन्न करना है और इसका दुरूपयोग करना ईश्वर को नाराज करना है। हम संसार में भी देखते हैं कि हमें किसी से कोई भी वस्तु सदुपयोग के लिए ही दी जाती है। सिपाही को बन्दूक सदुपयोग के लिए दी गई है, यदि वह दुरूपयोग करता है तो अपराधी बनकर सजा पाता है। हमें सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का अल्प मात्रा में उपयोग करना है। परिग्रह योग व ईश्वर प्राप्ति में बाधक है। अतः अनावश्यक परिग्रह से बचना चाहिये। शरीर को स्वस्थ रखते हुए ध्यान-उपासना से ईश्वर को प्राप्त कर ब्रह्मवर्चस को प्राप्त हों और मृत्यु के पश्चात ब्रह्मलोक अर्थात् मुक्ति या मोक्ष के अधिकारी बनकर जन्म-मरण के दुःखों से मुक्ति प्राप्त करें।

हमने अपने ज्ञान व अनुभव से यह जाना है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य व लक्ष्य आत्मा, ईश्वर व सृष्टि का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर योग साधनों से ईश्वर का साक्षात्कार करना व मृत्यु तक की अवधि तक जीवन-मुक्त अवस्था का समय व्यतीत कर मृत्यु के पश्चात जन्म मरण से छुटकर मुक्ति को प्राप्त करना है। **ईश्वर के साक्षात्कार व मुक्ति प्राप्ति के यथार्थ साधन यथा ईश्वरोपासन, यज्ञ, सेवा, परोपकार, सत्संग आदि केवल वैदिक धर्म में ही उपलब्ध हैं।** इनको जानना व आचरण करना ही हमारे व सभी मनुष्यों के जीवन का सर्वस्व या परम लक्ष्य है। हमारे ऋषि-मुनियों ने ईष्वर प्राप्ति व मुक्ति के मार्ग को ही मनुष्य का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके विपरीत जो मार्ग हैं वह मनुष्य को इस जन्म व परजन्म में सुख, स्मृद्धि व मुक्ति के स्थान पर बन्धन में डालकर दुःखमय जीवन व्यतीत कराते हैं। अतः प्रत्येक समझदार व्यक्ति को गहन विचार व चिन्तन कर अपने लक्ष्य का निर्धारण कर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नरत होना चाहिये। यदि इस लेख से किसी को लाभ होता है तो हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

सौम्यानन्द जी! ईश्वर मूर्ति में भी व्यापक-विद्यमान है

–भावेश मेरजा

8-17 टाउनशिप, पो० नर्मदानगर, जि० भरूच, गुजरात-392015

'आर्य जगत्' साप्ताहिक के 7 जुलाई 2013 के अंक में स्वामी सौम्यानन्द जी (महर्षि दयानन्द भवन, 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली) का लेख **"भतीजे के प्रश्न ताऊ के उत्तर"** प्रकाशित हुआ है। उसमें लेखक ने जो मूर्तिपूजा का खण्डन किया है यह तो उचित एवं स्तुत्य कार्य ही है। मगर साथ-साथ में उन्होंने ईश्वर की सर्वव्यापकता को लेकर जो वैदिक सिद्धान्त विरुद्ध बातें लिखी हैं, वे वास्तव में अनुचित हैं। 'भतीजे' का समाधान करने में उन्होंने पाठकों को ही भ्रम में डालने वाली बातें अपने इस लेख में लिखीं हैं। सौम्यानन्द जी ने लिखा है कि–"मूर्ति में भगवान् नहीं होते।" लेखक ने अपना विचित्र तर्क प्रस्तुत करते हुए आगे लिखा है–"जिसमें वह (भगवान्) स्थित होते हैं वह चेतन हो जाता है।"

अतः हमने पत्र तथा ई-मेल के माध्यम से सौम्यानन्द जी को सूचित किया कि उनकी ये बातें तो नितान्त सिद्धान्त विरुद्ध हैं वास्तविकता यह है कि ईश्वर समस्त जीवों में एवं समस्त सृष्टि में अर्थात् समस्त जड़-चेतन में व्यापक रूप से एकरस विद्यमान हैं। इसमें **"ईशा वास्यमिदं सर्वम्", "स पर्यगात्" तथा "स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु"** (यजु० ४०.१., ४०.८, ३२.८) आदि अनेक वेद मन्त्र प्रमाण हैं। क्या लेखक को इन वेद मन्त्रों का सही तात्पर्य भी विदित नहीं? ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में यही सिद्धान्त का कथन किया है कि ईश्वर समस्त जड़ पदार्थों तथा चेतन जीवात्माओं में अखण्ड एक-रस व्यापक है। अतः वह मूर्ति आदि पदार्थों में भी व्यापक है।

सम्भवतः सौम्यानन्द जी को इस बात का निश्चयात्मक ज्ञान नहीं है कि इस संसार में दो चेतन पदार्थ हैं–ईश्वर और जीवात्मा। और एक जड़ पदार्थ है–'मूल प्रकृति' अथवा उसमें से बना हुआ सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत्। ईश्वर तो जड़ पदार्थ में भी व्यापक है, मगर इससे वह जड़ पदार्थ चेतन नहीं हो जाता। जड़ पदार्थ तीनों कालों में जड़ ही रहता है। ईश्वर का चैतन्य गुण जड़ पदार्थ को चेतन नहीं कर सकता है। व्यापक पदार्थ चेतन है, इसलिए

व्याप्य जड़ पदार्थ भी चेतन हो जाए"–ऐसा नहीं होता। आर्य समाज के संन्यासी को इतनी समझ तो होनी चाहिए, ऐसी हमारी अपेक्षा रहती हैं। अन्यथा सैद्धान्तिक बातों को लेकर पाठकों को भ्रमित करने से स्वयं को बचाना ही ठीक है।

हमारे पत्रों के उत्तर में वेदानुकूल सत्य बात को स्वीकार करने की बात तो दूर रही, सौम्यानन्द जी ने पुनः अपनी वही भ्रामक बातें ही दोहराते हुए हमें लिखा कि–

मूर्ति में भगवान् होता तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं होती? मूर्ति में भगवान् मानने से मृत शरीर में भी भगवान् मानना पड़ेगा, तब क्या आप भगवान् का दाह संस्कार करते हैं? मृत शरीर में से जीव के साथ परमात्मा भी निकल जाता है, मात्र पृथिवी तत्त्व शेष बचते हैं। अतः भगवान् केवल चेतन जीवात्मा के भीतर और जड़ के बाहर स्थित होता है। मूर्ति के अन्दर ईश्वर व्यापक नहीं होता है। मूर्ति के बाहर आकाशवत् विद्यमान होकर वहाँ हो रहे क्रियाकलापों को देखता है। परमात्मा आकाश के सदृश सब जगत् में व्यापक है, परन्तु ठोस जड़ वस्तु में आकाश (रिक्त स्थान) नहीं होता अतः भगवान् भी उसमें नहीं रह सकता। परन्तु उसके चारों ओर आकाश के समान व्यापक रूप से रहता है। सौम्यानन्द जी का यह भी कहना है कि सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में "जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्ति में भी है?"–इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि दयानन्द ने जो कुछ लिखा है इसका तात्पर्य यह निकलता है कि ईश्वर मूर्ति, पुष्प, पत्र, घण्टा, घड़ियाल, चन्दन, धूप आदि जड़ पदार्थों में विद्यमान नहीं होता है, इत्यादि।

इस आलोच्य विषय पर हमने महर्षि जी के सत्यार्थ प्रकाश आदि के कई प्रमाण सौम्यानन्द जी की सेवा में प्रस्तुत किये, मगर प्रतीत होता है कि वे सत्य सिद्धान्त को मान्य करने के लिए उद्यत नहीं है। उन्हें अपनी निराधार, प्रमाण शून्य, कल्पित बातें ही सत्य लगती हैं।

ईश्वर जड़ एवं चेतन सकल पदार्थों में एकरस व्यापक–विद्यमान है, यह प्रतिपादित करने के लिए हमने जिन बातों एवं प्रमाणों को उद्धृत किया वे निम्न हैं–

1. ऋषि दयानन्द का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि ईश्वर मूर्ति आदि जड़ पदार्थों में भी व्यापक रूप से विद्यमान होता है। अर्थात् मूर्ति आदि में भी ईश्वर का अभाव नहीं होता है। जैसे कि- (क) सत्यार्थ

प्रकाश के प्रथम समुल्लास में विष्णु नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है–"चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम विष्णु है।" (ख) अन्तर्यामी नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है–"जो सब प्राणी और अप्राणीरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम अन्तर्यामी है।" (ग) वसु नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है–"जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब में वास कर रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम वसु है।" (घ) पुरुष नाम की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है–"जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, इसलिए उस परमेश्वर का नाम पुरुष है। (च) कुबेर नाम की व्याख्या में लिखा है–"जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे, इससे उस परमेश्वर का नाम कुबेर है।" ऐसे ही इसी समुल्लास में "विश्व" नाम की व्याख्या भी द्रष्टव्य है।
2. अष्टम समुल्लास में लिखा है–"जब वह (परमात्मा) प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है, तभी उनको पकड़कर जगदाकार कर देता है।" उसी समुल्लास में फिर लिखा है–"वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्त प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बना कर बाहर स्थूल रूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है।"
3. सप्तम समुल्लास में **"स पर्यगात्"** (यजु० ४०.८) का अर्थ ऋषि ने– "वह परमात्मा सब में व्यापक" किया है। उसी समुल्लास में फिर लिखा है–"वैसे ब्रह्म के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते।...इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्त होन से परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न, और स्वरूप भिन्न होने से एक कभी नहीं होते।" ऋषि ने उसी समुल्लास में यह भी लिखा है कि–"वह सर्वव्यापक होने से कंस, रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है।" जैसे उन मूर्त्त शरीरों में परिपूर्ण था, वैसे मूर्ति आदि पदार्थों में भी व्यापक–परिपूर्ण हो रहा है।
4. एकादश समु० में **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** मन्त्र के अर्थ में ऋषि ने लिखा है–"जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की.

.." इसी समुल्लास में फिर ईश्वर के बारे में लिखा है–"जो अचल अदृश्य, जिस के बिना एक परमाणु भी खाली नहीं है...।"

5. **"ईशा वास्यमिदं सर्वम्"** (यजुर्वेद ४०.१) मन्त्र के वेद भाष्य भावार्थ में ऋषि ने लिखा है–"यह जगत् ईश्वर से व्याप्त, और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है।" सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में इसी मन्त्र के अर्थ में लिखा है–"जो कुछ इस संसार में जगत् है, उस सब में व्याप्त होकर जो उसका नियन्ता है, वह ईश्वर कहता है।" मूर्ति भी तो जगत् का ही हिस्सा है, जगत् अन्तर्गत ही है। अतः उसमें भी ईश्वर व्यापक है।
6. **"स पर्यगात्"** (यजु० ४०.८) मन्त्र की व्याख्या ऋ० भा० भूमिका के वेदानां नित्यत्व विचार प्रकरण में ऋषि ने लिखा है–" **(स पर्यगात्)** जो ईश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषण युक्त है, सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है, उसकी व्याप्ति से एक परमाणु भी रहित नहीं है।"
7. **"स ओतः प्रोश्चय विभुः प्रजासु"** (यजु० ३२.८) मन्त्र के संस्कृत भाष्य के पदार्थ में ऋषि ने लिखा है–**"विभू=व्यापकः,=प्रजासु प्रकृतिजीवादिषु।"** प्रकृति जड़ पदार्थ है। ईश्वर उसमें विभूः=व्यापकः है। जब जड़ प्रकृति में ईश्वर व्यापक है, तो जड़ मूर्ति में व्यापक क्यों नहीं? इसी मन्त्र के भावार्थ में लिखा है–**"येन व्याप्तेन विना किंचिदपि वस्तु न वर्त्ततै"**="जिस व्याप्त ईश्वर के बिना कुछ भी वस्तु नहीं खाली है।" जब कोई भी वस्तु ईश्वर से खाली नहीं, तो फिर मूर्ति ईश्वर से खाली कैसे हो सकती है?
8. **"अदित्यै रास्नासि"** (यजु० १.३०) मन्त्र का ऋषिकृत भाष्य भी दृष्टव्य है। वहाँ **"विष्णु"** तथा **"वेष्पः"** इन मन्त्रगत पदों के अर्थ पर विचार करने की आवश्यकता है। वहाँ ऋषि ने ईश्वर को पृथिवी आदि सब पदार्थों में प्रवर्त्तमान–व्यापक लिखा है। मन्त्र के भावार्थ ऋषि ने स्पष्ट लिखा है कि जगदीश्वर "वस्तु–वस्तु में स्थित" है।
9. अपने "भ्रान्तिनिवारण" ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने लिखा है–"वह (परमेश्वर) अपने स्वाभाविक गुण और सामर्थ्यादि के साथ समवाय; और जगत् के कारण (अर्थात् मूल प्रकृति), कार्य (अर्थात् संयोगजन्य कार्य–पदार्थ) तथा जीव के साथ संयोग–संबंध अर्थात् व्याप्य–व्यापकतादि प्रकार से है।"
10. यह भी समझना चाहिए कि मृत शरीर में भी ईश्वर व्यापक है। दाह संस्कार तो केवल जड़–भौतिक स्थूल शरीर का ही किया जाता है। ईश्वर अभौतिक चेतन पदार्थ होने से अग्नि से वह जलता नहीं है। अतः उस पर दाहकर्म का कोई भी प्रभाव नहीं होता है। इसी प्रकार जीवात्मा को भी जलाया नहीं जा सकता अभौतिक चेतन पदार्थ होने से। केवल प्राकृतिक–भौतिक पदार्थों को ही अग्नि में जलाया जा सकता है।
11. सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास में ऋषि ने लिखा है–**"जैसे सब घट पटादि में आकाश व्यापक है और घट पटादि आकाश नहीं, वैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होता।"** वेदादि शास्त्रों में ईश्वर की सर्वत्र विद्यमानता आदि का ज्ञान कराने के लिए उसे आकाश की उपमा दी गई है। सप्तम समुल्लास में अवतारवाद के खण्डन में ऋषि ने लिखा है कि–**"आकाश अनन्त और सब में व्यापक है।"** ईश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर होने से समस्त जीव एवं सकल जड़ पदार्थों में अखण्ड एकरस व्यापक विद्यमान रहता है। जीव एवं सकल जड़ पदार्थ तथा मूल प्रकृति "व्याप्य" हैं, ईश्वर उन सब में "व्यापक" है। व्याप्य और व्यापक पदार्थों में वैधर्म्य के कारण भिन्नता बनी ही रहती है। दोनों स्वरूप से अभिन्न नहीं हो जाते।
12. **प्रजापतिश्चरति...**(यजु० ३१.१९) मन्त्र की व्याख्या में ऋषि ने लिखा है–**"स एव प्रजापतिः सर्वस्य स्वामी जीवस्यान्यस्य च जडस्य जगतोअन्तर्गर्भे मध्येअन्तर्यामिरूपेणाजायमानोअनुत्पन्नो अजः सन्नित्यं चरति।"** भाषार्थः "जो प्रजा का पति अर्थात् सब जगत् का स्वामी है, वही **जड़ और चेतन के भीतर और बाहर अन्तर्यामिरूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है।"** ऋ० भा० भूमिका, सृष्टि विद्या विषय। इस प्रमाण से यथार्थ का बोध सुगमता से हो सकता है।
13. सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समु० में मूर्तिपूजा खण्डन प्रकरण में ऋषि दयानन्द ने ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि सर्वव्यापक ईश्वर मूर्ति,

पुष्प, पत्र, घण्टा, घड़ियाल, हाथ, शिर, जल, चन्दन, धूप, अन्न आदि में विद्यमान नहीं होता है। सत्यार्थ प्रकाश में यह स्थान ध्यान से पढ़ने योग्य है। ऋषि ने वहाँ अन्त में स्पष्ट लिखा है–**"क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है।"** अतः यहाँ उन्होंने मूर्ति (व्याप्य) पदार्थ की उपासना का खण्डन किया है और कहा है कि व्यापक की ईश्वर की उपासना करनी उचित है। सर्वव्यापक ईश्वर की किसी एक ही वस्तु (मूर्ति) में भावना करने को अनुचित बताया है। उस वस्तु में ईश्वर की सत्ता का निषेध नहीं किया है। "परमात्मा सर्वव्यापक होने से वह मूर्ति में भी विद्यमान है"–इस सैद्धान्तिक बात को प्रतिपादित करने का अर्थ यह कदापि नहीं निकालना चाहिए कि ऐसी बात करने वाला व्यक्ति मूर्तिपूजा को प्रोत्साहित करना चाहता है। **मूर्तिपूजा का तो खण्डन ही करना उचित है, मगर इसके लिए मूर्ति में ईश्वर की सत्ता ही नहीं है–इस प्रकार की अवैदिक बात करना सर्वथा अनुचित है।**

14. फिरोजपुर में पं० कृपाराम नामक एक व्यक्ति ने महर्षि से पूछा कि–"बतलाओ, मेरे इस घड़ी में ईश्वर कहाँ है?" उसके उत्तर में महर्षि ने आकाश और अपने सोटे का उदाहरण देकर उस व्यक्ति को समझाया कि ईश्वर घड़ी, सोटा इत्यादि समस्त पदार्थों में विद्यमान है। जगत् का कोई भी पदार्थ चाहे जड़ हो या चेतन ईश्वर की व्यापकता से पृथक् नहीं है। (द्र० दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह, प्र० आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, जून २०१० संस्करण, पृ० १२५-१२६)
15. आर्य समाज के महान् लेखक एवं दार्शनिक विद्वान् श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने लिखा है–"ईश्वर सर्वव्यापक है। वह अणु-अणु और परमाणु-परमाणु में विद्यमान है। वह जीव के भीतर है, इसलिए उसको अन्तर्यामी कहते हैं। वह अन्तर्यामी ईश्वर हमारे सब कामों को जानता है और उसीके अनुकूल हमारी भलाई करता है। कुछ दार्शनिक लोगों का आक्षेप है कि जब तक हर परमाणु और हर जीव के बीच में कोई खाली स्थान न हो, उस समय तक कोई दूसरी वस्तु उसमें व्यापक नहीं हो सकती। इसलिए यदि परमाणु या जीव को एक असंयुक्त वस्तु माना जाय तो ईश्वर उसमें कैसे व्यापक हो सकेगा?

परन्तु यह नियम भौतिक पदार्थों का है। दीवार में जहाँ-जहाँ छिद्र होते हैं, वहाँ पानी व हवा भर जाती है, परन्तु जहाँ छिद्र नहीं होता वहाँ भर नहीं सकता। परन्तु अभौतिक चेतन तत्वों के लिए यह नियम नहीं है। आकाश सब तत्त्वों में व्यापक है। इसी प्रकार ईश्वर समस्त जीवों और परमाणुओं में व्यापक है। ईष्वर की व्यापकता में भौतिक नियम नहीं लग सकता।" (गंगा ज्ञान सागर, अनुवादक एवं संपादक–प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु', प्र० गोविन्दराम हासानन्द, १९९९ संस्करण, प्रथम भाग, पृ० ५९)

16. वैसे तो सर्वव्यापक शब्द का अर्थ ही यही होता है कि सभी पदार्थ में व्यापक रहने वाला अर्थात् सब जगह उपस्थित–विद्यमान रहने वाला। ईश्वर सब जगह उपस्थित है इसका अर्थ यही है कि वह सभी पदार्थों में अन्दर बाहर एकरस व्यापक-विद्यमान है।

उक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर मूर्ति आदि समस्त जड़ पदार्थों में भी अखण्ड एकरस व्यापक रूप से विद्यमान होता है।

'स्वामी दर्शनानन्द जीवन चरित' से उद्धृत

"महर्षि दयानन्द के पश्चात् एक तृतीयांश प्रचार का श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है।"

–श्री महात्मा मुंशीराम जी ने स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी को लिखा था

धर्म के मग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेत कर चलना कुमारग में कदम धरना नहीं॥
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बोधवर्द्धक लेख लिखने में कमी करना नहीं॥

–महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा

नारोवाल (पश्चिमी पंजाब) में पादरियों से शास्त्रार्थ

श्री पं० कृपाराम जी के आरम्भिक काल की घटनाओं में उनका नारोवाल का शास्त्रार्थ एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह शास्त्रार्थ श्री पं० लेखराम जी के जीवनकाल में 1894 ई० के लगभग हुआ बताया जाता है।

नारोवाल के 142 हिन्दू व सात मुसलमान (कुल 149) लड़के ईसाई पादरियों के प्रभाव में ईसाई बनने लगे। बप्तिस्मा लेने का समय व दिन

निश्चित हो गया। तब पादरियों को सरकारी अधिकारियों का पूरा संरक्षण प्राप्त था। लड़कों के माता-पिता विवश थे। क्या करें, उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था। कुछ अभिभावकों ने नारोवाल के आर्योपदेशक पं० बरकतराम जी से सम्पर्क किया और कहा कि जो खर्च होगा, हम करेंगे, आप जैसे-कैसे अपने किसी शास्त्रार्थ महारथी को लावें ताकि हमारे लड़के पतित होने से बच सकें।

यह पं० बरकतराम जी एक परमोत्साही आर्य सेवक थे। श्री पं० कृपाराम जी के सत्संग से ही आर्य बने थे। **तब इन्हीं लड़कों के अभिभावकों ने इन्हें कहा था कि या तो आर्यसमाज छोड़ दें या हमारी पुरोहिताई छोड़ दें।** पं० बरकतराम जी ने वैद्य का धंधा करके परिवार का पालन-पोषण करना आरम्भ कर दिया। वैदिक धर्म प्रचार में लगे ही रहे। आपने लोगों से कहा, "मैं एक पैसा भी नहीं लूँगा और यह कार्य कर दूँगा।"

आपने भाग-दौड़ आरम्भ कर दी। कहीं पं० लेखराम जी की खोज तो कहीं पं० कृपाराम जी की खोज आरम्भ हो गई। श्री पं० लेखराम जी की तब स्यालकोट जिला में बड़ी धाक थी। बटाला में पं० लेखराम जी का पता लगा। वहाँ तार दिया गया। शुक्रवार तार पहुँचा। रविवार ये लड़के ईसाई बनने वाले थे। पं० लेखराम तो बटाला में न थे। पं० कृपाराम वहीं थे। आने-जाने के लिए न कोई ताँगा, न कोई और साधन। **रात-रात को धुन का धनी कृपाराम चल पड़ा।** पं० श्रीराम जी ने लिखा है कि 22 मील की लम्बी यात्रा चलते-चलते पं० कृपाराम नारोवाल पहुँचे। हमारे विचार में यह दूरी बाईस मील से कहीं अधिक है। भूल से बाईस मील छप गया है।

नारोवाल जाकर एक सरोवर के तट पर बैठकर इस कार्य को करने के लिए कुछ युक्ति सोचने लगे। पं० बरकतराम जी को बुलाया। एक लड़के को लेकर पादरी के घर गये।

पं० कृपाराम जी ने कहा "मैं धर्म का जिज्ञासु हूँ। कुछ चर्चा करनी है। धर्म क्या है? यह बतावें।"

पादरी ने जो कुछ कहा, "उसे कागज पर लिख देने की विनती की। फिर कहा, "मुझे चार-पाँच दिन के लिए बाइबल भी दीजिए। मैं देखकर लौटा दूँगा।" पादरी ने धर्म की परिभाषा काग़ज़ पर लिख दी और बाइबल लेकर बाज़ार में आ गये। आपने भरे बाज़ार में बड़े उत्साह व निर्भीकता से

ईसाई मत के खण्डन व वैदिक धर्म की महत्ता पर भाषण देना आरम्भ कर दिया। सारे नगर में शोर मच गया। श्रोता ऐसे खिंचे कि पादरी देखकर दंग रह गये।

पादरी की लिखी "धर्म" की परिभाषा दिखाते हुए आपने कहा कि या तो यह परिभाषा ठीक नहीं और या बाइबल में जो लिखा है, सो ठीक नहीं। पं० कृपाराम जी के इस एक व्याख्यान का यह परिणाम निकला कि **149 में से एक भी लड़का ईसाई न बना।**

पं० कृपाराम जी की प्रेरणा से आर्यसमाज ने तब वहाँ अपनी पाठशाला खोल दी। पण्डित जी स्वयं उसमें पढ़ने लगे। मुसलमानों ने भी अपना स्कूल खोला। तहसीलदार ने रोब से आर्यसमाज की पाठशाला बन्द करवानी चाही परन्तु कृपाराम दबने वाले न थे। डिप्टी कमिश्नर के साथ पादरी पण्डित जी के पास आए। तब आपने कहा कि ईसाई मत की शिक्षा विषैली है। पादरी पण्डित जी की बातों का कोई उत्तर न दे पाया।[93]

बाज़ारों में ईसाई लोग 'जय जगदीश हरे' पौराणिक आरती के रचयिता पं० श्रद्धाराम फिलौरी रचित अपना यह गीत गाते घूमने लगेः-

ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया,
मुख से ईसा-ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल॥

स्मरण रहे कि साठ रुपये मासिक ईसाइयों से लेकर श्रद्धाराम उनके लिए ऐसे गीत रचा करता था। वैसे वह कम्पोजिटर था।

तब पं० कृपाराम जी ने पंजाबी में एक कविता रची, जो नगर में गली-गली में गूँजने लगी। कविता के कुछ पद्य नीचे अंकित हैंः-

सच्ची बात हमारी भाइयो, सुन लो जरा ख्लो[1] के,
वह क्या तुम को मुक्ति देसी[2], जो मर्या[3] रो रो के,
फल अम्बाँ[4] दा किसने खाया, कीकर दा बी[5] बो के,
गुनाहगार को मारे ख़लिक[6], शूली नाल[7] पिरो के,
जो मुर्दे को पूजे मुरख, मरदा[8] काफर होके।

1. खड़े होकर, 2. देगा, 3. मरा, 4. आमों का, 5. कीकर का बीज बोकर, 6. परमात्मा, 7. साथ, 8. मरता है।

इस घटना पर और कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। जाति प्रेमी, धर्म प्रेमी सज्जन इससे जितनी भी प्रेरणा लें, थोड़ी है। सचमुच कृपाराम पुरुषार्थ का पुतला था।

आर्य समाज मयूर विहार फेज-1 में वेद-शतक महायज्ञ, श्रावणी उपाकर्म एवं स्वामी दर्शनानन्द निर्वाण शताब्दी-वर्ष-व्याख्यान का कार्यक्रम

-मंत्री,
आर्य समाज
मयूर विहार फेज-1 दिल्ली

आर्य समाज यमूर विहर फेज-1, पाकेट IV में उपर्युक्त कार्यक्रम सफलता पूर्वक आयोजित किया गया। उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलपति प्रो० डॉ० महावीर अग्रवाल के ब्रह्मत्व में चतुर्वेद शतक महायज्ञ सम्पन्न हुआ। 08 अगस्त से 11 अगस्त 2013 की चार दिवसीय अवधि में प्रथम तीन दिन प्रात: 7.30 से 9.00 बजे तक यज्ञ एवं सायंकाल 7.30 से 8.30 बजे तक भजनोपदेशक श्री नरेश सोलंकी के भजन तथा रात्रि 8.30 से 9.30 बजे तक माननीय डॉ. महावीर जी का सारगर्भित प्रवचन होता रहा। रविवार 11 अगस्त (कार्यक्रम के चौथे दिन) प्रात: 7.45 से 10 बजे तक अथर्ववेद शतक यज्ञ एवं यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। यज्ञ के विद्वान् ब्रह्मा माननीय प्रो. साहब बीच-बीच में कुछ वेदमन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या भी करते रहे एवं श्रद्धापूर्वक, विधि अनुसार यज्ञ की महत्ता पर भी प्रकाश डालते रहे। पूर्णाहुति के पश्चात् अपने प्रवचन में विद्वान् वक्ता ने अथर्ववेद के मन्त्र 12.5.13 "स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता। यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम्।" की सारगर्भित व्याख्या की। सभी श्रोता मन्त्र मुग्ध होकर उनका वेदोपदेश सुनते रहे। सभागार श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। पूर्वाह्न 11.30 बजे कार्यक्रम का यज्ञ एवं प्रवचनवाला भाग पूर्ण हुआ।

तदुपरान्त स्वामी दर्शनानन्द निर्वाण शताब्दी व्यख्यान का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। आर्य समाज की ओर से इस उद्देश्य के लिए अबोहर (पंजाब) से माननीय प्रा० राजेन्द्र जी जिज्ञासु एवं मेरठ से श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य को आमन्त्रित किया हुआ था। दोनों विद्वान् उपस्थित थे। श्रद्धेय जिज्ञासु जी ने स्वामी दर्शनानन्द जी के त्याग, तप, विद्या एवं शास्त्रार्थ-कौशल से अपनी बात आरम्भ की। ईसवी सन् 1861 में जगरावाँ (पंजाब) में जन्मे स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी आर्यसमाज की पहली पीढ़ी के विद्वान् थे। सन् 1901 में स्वामी अनुभवानन्द जी से सन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी दर्शनानन्द नाम पाने के पूर्व 17-18 वर्ष की आयु में ग्रह-त्याग कर स्वामी नित्यानन्द के रूप में कादियाँ एवं दीनानगर (गुरदासपुर) के

उनके भ्रमण की ऐतिहासिक घटना का 'जिज्ञासु' जी ने यथातथ्य वर्णन किया। ऋषिदयानन्द सरस्वती जी के व्याख्यान सुनकर पं० कृपाराम (स्वामी दर्शनानन्द का पूर्व नाम) जी पर वेद की विचारधारा का रंग ऐसा चढ़ा कि फिर जीवन भर उन पर उसी के प्रचार-प्रसार की धुन सवार रही। लगभग 36-37 वर्ष तक आप उपनिषदों के भाष्य, दर्शनों के भाष्य ट्रैक्ट लिखने, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और शास्त्रार्थ करने के कार्य में ही लगे रहे। आर्ष ग्रन्थों के वे प्रथम प्रकाशक थे। वैदिक साहित्य के प्रकाशन के महत्व की चर्चा करते हुए श्री जिज्ञासु जी ने मैसर्स गोविन्दराम हासानन्द के कार्य की भी बहुत प्रशंसा की। वर्तमान समय में ये राष्ट्रीय स्तर के ऐसे प्रकाशक है जो वैदिक वाङ्मय के ग्रन्थों की विश्व भर में आपूर्ति कर रहे हैं। इस विषय में उन्होंने एक घटना का उल्लेख किया कि "अकस्मता एक दिन एक व्यक्ति का मुझे (जिज्ञासु जी को) फोन आया। उस व्यक्ति की आवाज मैं पहचान नहीं पाया तो पूछा कि आप कौन बोल रहे हैं। उस व्यक्ति ने कहा कि बंगा (पंजाब) से मैं डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा बोल रहा हूँ। मैंने (जिज्ञासु) कहा कि क्या आप वही सुरेन्द्र कुमार शर्मा हो जो हिन्दुओं के विरुद्ध जमायते इस्लामी की पत्रिका 'कान्ति' में लिखते रहते हो। उस व्यक्ति ने कहा कि अब मैंने उस प्रकार के हिन्दुओं के विरुद्ध लेख लिखने बन्द कर दिये हैं। मैंने पूछा कि क्या कारण है जिसकी वजह से लेख लिखने बन्द किये हैं। उस व्यक्ति ने कहा कि आपकी पुस्तक "कुरान वेद की छाँव में" तथा "कुरान सत्यार्थ प्रकाश के आलोक में पढ़ने के बाद मेरा मन बदल गया और मैंने हिन्दुओं के विरुद्ध लिखना बन्द कर दिया। मैंने पूछा कि आपको ये दोनों पुस्तकें कहाँ से प्राप्त हुई। उसने कहा कि मैंने मैसर्स विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द नई सड़क दिल्ली से मंगायी थी।" इस प्रकार की महती सेवा इन प्रकाशकों ने की है। इस उदाहरण के द्वारा प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने प्रवचन, शास्त्रार्थ और वैदिक साहित्य के प्रकाशन का महत्त्व दर्शाते हुए स्वामी दर्शनानन्द द्वारा आर्य समाज के लिए किये गये विस्तृत कार्यो का ब्योरा श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत किया।

इनके पश्चात् श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य ने अपने व्याख्यान में स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा किए गए कुछ विशेष कार्यों पर प्रकाश डाला। स्वामी जी विद्या-व्यसनी थे। आजाद नित्यानन्द नाम के प्रथम सन्यास से घर वापस आने पर जगरावाँ में अपने निवास पर एक संस्कृत पाठशाला खोली। पितामह श्री पं० दौलतराम जी के स्वर्गवास के पश्चात् काशी की उनकी सम्पत्ति और 'क्षेत्र' (अन्नक्षेत्र) आदि दान-पुण्य के कार्यों की व्यवस्था के लिए कृपाराम को कार्य सम्भालने के लिए कहा गया। पिता की आज्ञा पर उन्हें वहाँ अपना पूरा गृहस्थ साथ रखना पड़ा। उस

समय आर्य सामाजिक विद्यार्थियों को काशी के पण्डित पढ़ाते नहीं थे। उनके खाने-पीने रहने की कोई व्यवस्था नहीं थी। आर्य विद्यार्थी आत्मगोपन करके रहते थे या मारे-मारे फिरते थे। इस परेशानी को दूर करने के लिए ही पं० कृपाराम ने अपनी पृथक पाठशाला खोली थी। अनेक आर्य विद्वानों ने विद्यार्थी दशा में उक्त पाठशाला से सहायता और शिक्षा पाई। आचार्य पं० श्री गंगादत्त जी पं० भीमसेन जी, पं० नारायण दत्त जी सिद्ध थे। श्री पं० काशीनाथ जी मुख्य थे। वर्तमान गुरुकुल प्रणाली के संस्थापक आचार्य यहाँ पर ही तैयार हुए।

विद्यार्थियों को पुस्तकें भी कम मूल्य पर उपलब्ध कराने की पं० कृपाराम जी ने ठान ली। काशी में आपने चैत्र मास में संवत् 1945 विक्रमी को आसन जमाया था। प्रकाशन का कार्य स्वयं करने के लिए आपने बांकीपुर (पटना) बिहार जाकर वहाँ से "दि इण्डियन ट्रेड एडवरटाइजर" प्रेस खरीद लिया और इसी को 10 दिसम्बर सन् 1889 ई० में बनारस ले आए। इसी प्रेस का नामकरण 'तिमिरनाशक मुद्रणालय हुआ। यहीं "तिमिरनाशक साप्ताहिक" पत्र भी प्रकाशित हुआ। उस समय लाजरस प्रैस काशिका (व्याकरण की पुस्तक) रुपये 15/= में तथा महाभाष्य रुपये 30/= में बेच रहा था। पं० कृपाराम जी ने यही ग्रन्थ अपने यहाँ छापकर काशिका तीन रुपये में और महाभाष्य दस रुपये में उपलब्ध करा दिया। किसी विद्यार्थी पर यदि पूरा मूल्य नहीं भी हुआ तो जितने रुपये हुए उतने में ही ग्रन्थ दे दिये। बहुतों को मुफ्त भी दिये। लाजरस प्रैस का मालिक यूरोपियन था। उसने पं० कृपाराम जी पर मुकदमा कर दिया। परन्तु मुकदमा पण्डित जी जीत गए और लाजरस प्रैस को भी पुस्तकों का मूल्य कम करना पड़ा। पं० कृपाराम जी ने 6 उपनिषदों, दर्शनों का भाष्य किया एवं ट्रैक्ट-लेखन के काम में तो आप और मास्टर लक्ष्मण के अग्रणी थे ही। पण्डित कृपा राम जी ने अपने हिस्से की सारी सम्पत्ति इन्हीं कामों में काशी में रहते हुए ही खर्च कर दी। वेद की विचारधारा और संस्कृत के प्रचार में ही सर्वस्व समर्पित कर दिया।

पण्डित जी ने गुरुकुलों की स्थापना का बेहद महत्त्वपूर्ण कार्य किया। एक दो गुरुकुल ही नहीं खोले, पाँच गुरुकुल स्थापित किये गुरुकुल सिंकंदराबाद (जि-बुलन्दशहर) गुरुकुल बदायूँ, गुरुकुल विरालसी, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल चोहाभक्ताँ (पोठोहार) जिला-रावलपिण्डी। गुरुकुलों की शिक्षा के प्रताप से ही आर्य समाज को श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री, पं० रामचन्द्र देहलवी, पं० प्रकाशवीर शास्त्री पं० ओमप्रकाश शास्त्री (विद्याभास्कर) आदि आर्य रत्न मिले। गुरुकुलों से विद्या और तपरूपी पूंजी लेकर जो आर्य विद्वान् सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के कार्य क्षेत्र में उतरे उनको देखकर प्रसिद्ध मनीषी, भारत रत्न, डॉ० भगवान दास ने अपनी पुस्तक "मानव धर्म सार" में उत्तम शिक्षा की

विशेषताएँ बताते हुए लिखा-"**बुद्धि, स्वभाव और शरीर-ये तीन तथा ज्ञान, इच्छा और कर्म-ये तीनों भी जिससे उत्तम और दृढ़ बनें; जिससे सत्व, रज और तम के अंश परिमार्जित हों, वही उचित शिक्षा है। इस प्रकार की उचित शिक्षा का देना गुरुकुल में ही सम्भव है। विद्या उत्तम संस्कार डालने वाली भी हो और धनोपार्जन में सहायता देने वाली भी हो।**" आर्य समाज के तपस्वियों, विद्वानों द्वारा स्थापित गुरुकुलों की शिक्षा की प्रशंसा आर्योतर मनीषियों ने भी की है।

पं० कृपाराम जी ने ईसवी सन् 1901 में स्वामी अनुभवानन्द जी से सन्यास की दीक्षा लेकर स्वामी दर्शनानन्द नाम पाया। स्वामी मनीषानन्द से दर्शनों की चर्चाएँ सुन-सुनकर बहु श्रुत हुए और षड्दर्शनों के मन्थनकर्ता बने। काशी के तत्कालीन शिखरस्थ पण्डित शिवकुमार जी को शास्त्रार्थ में पराजित किया। ईसाई एवं इस्लाम मत के विद्वानों को कहाँ-कहाँ कितनी बार हराया, यह गणना करना सम्भव नहीं है। स्वामी जी महान तार्किक एवं शास्त्रार्थ समर के अजेय योद्धा थे। पादरी ज्वाला सिंह से कई बार शास्त्रार्थ हुआ और प्रत्येक बार पादरी को निरुत्तर होना पड़ा।

जीवन के अन्तिम समय में स्वामी जी हाथरस में थे। रुग्ण थे। उन्हीं दिनों आर्य समाज हाथरस का प्रथम वार्षिकोत्सव था। आर्य समाज के शीर्ष विद्वान् श्री पं० तुलसीराम जी स्वामी, पं० घासीराम जी उत्सव पर आए हुए थे। स्वामी जी के शरीर की अवस्था बहुत दुर्बल थी। परन्तु रोग की गम्भीरता का ध्यान न करते हुए स्वामी जी ने आग्रह किया कि उन्हें शय्या पर ही उत्सव के पण्डाल में ले जाया जावे। उनकी बात सबको माननी पड़ी। उन्हें शय्या पर ही पण्डाल में लाया गया। अब चोला छोड़ने में कुछ ही समय शेष था। आप कठिनता से ही बोल पाये। "जिस किसी को भी शास्त्रार्थ करना हो कर ले। फिर न कहना।"

शास्त्रार्थ करने के लिए तो भला किसने सामने आना था। इस प्रकार विजय श्री का वरण करते हुए आपका महाप्रयाण हुआ। गुरुकुलों के आदि स्रोत, आर्ष ग्रन्थों के प्रथम प्रकाशक, निर्धन विद्यार्थियों के आश्रय दाता, वैदिक पाठशालाओं के संचालनकर्ता, दर्शनों, उपनिषदों के भाष्यकार काशी के शिखरस्थ पण्डितों के विजेता स्वामी दर्शनानन्द जी को विनम्र श्रद्धांजली देते हुए श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य ने अपना वक्तव्य समाप्त किया।

कार्यक्रम के दौरान ही प्रो० राजेन्द्र जी जिज्ञासु लिखित एवं विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रकाशित "स्वामी दर्शनानन्द-जीवन चरित" का भी विमोचन हुआ।

आगामी विशेषांक

वेद प्रकाश का अक्टूबर 2013 का अंक विशेषांक होगा। इसमें प्रस्तुत है प्रसिद्ध संन्यासी पूज्यपाद स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती जी महाराज का महत्त्वपूर्ण लेखः–

पराविद्या के पांच अध्याय

मुण्डक उपनिषद के प्रथम खण्डों में ही यह उल्लेख है कि ब्रह्मवेत्ताओं की यह मान्यता है कि विद्यायें दो प्रकार की होती हैंः–(1) पराविद्या और अपराविद्या–'द्वे विद्ये–परा चैवापरा च।' (1/14(। अपरा विद्या के अन्तर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ज्योतिष, अर्थात् समस्त वेद और वेदांग आते हैं–किन्तु पराविद्या इनसे भिन्न है। यह वह विद्या है जिसके माध्यम से अक्षर ब्रह्म, अथवा अविनाशी आत्मा को जाना जाता है।

सूक्ष्म जगत् अध्यात्मविद्या के अध्ययन का विशेष विषय है। इस अध्ययन के पांच अध्याय हैंः–

1. इन्द्रियाँ
2. प्राण
3. मानसतंत्र
4. जीव
5. परमात्मा

कोई भी ज्ञानी, मुमुक्षु, जिज्ञासु या अध्येता इन पाँचों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकतां ये पाँचों अमूर्त्त और निराकार हैं, किसी ने भी इनको देखा नहीं, इन्हें नापा–तौला नहीं, इनका चित्र नहीं खींचा, कभी यह पकड़ में नहीं आये। भौतिक विज्ञान, रसायन या गणित का कोई भी नियम, सूत्र प्रतीक, समीकरण इन पर लागू नहीं है। ये पाँचों एकतन्त्र में ग्रंथित हैं, और उपनिषदें इसका वर्णन करके ही गौरवान्वित हुई हैं।

पराविद्या के गूढ़ रहस्यों को लेखक ने अत्यन्त सरल व रोचक शैली में प्रस्तुत किया है, पाठकों को निश्चित ही आनन्द की अनुभूति होगी।

वेद प्रकाश के जिन सदस्यों का शुल्क हमें 30 सितम्बर तक प्राप्त हो जाएगा उन्हें यह विशेषांक अवश्य प्राप्त होगा।

आप अपना शुल्क मनीआर्डर, बैंक ट्राँस्फर, इत्यादि से, एक वर्ष का रुपये 30.00, पाँच वर्ष का रुपये 150.00 तथा आजीवन रुपये 400.00 विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द के खाता न० 603220100011589 बैंक आफ इण्डिया शाखा अन्सारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली में जमा करवा सकते हैं।